RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-04
April -2019
ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com [UGC Listed Journal]

श्रीमद्भगवद्गीता में आध्यात्मिक चिंतन

रेखा देवी ओझा

शोध छात्रा (संस्कृत विभाग) इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

मूल शब्द : गीता, वाराह पुराण, उपनिषद एवं ईश्वर।

उपनिषद् रूपी गायों से दुग्ध के संकलनकर्त्ता भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता के रूप में जो उपदेश सम्पूर्ण विश्व को दिये हैं अर्जुन रूपी वत्स तो उसका निमित्त मात्र है। धार्मिक ग्रन्थों की अजस्र प्रवाहिनी परम्परा में अद्वितीय स्थान रखने वाली श्रीमद्भगवद्गीता का ज्ञान अथाह पारावर है, अनन्त भावों का सम्मेलन है। सर्वशास्त्रमयी गीता का ज्ञान हो जाने पर समस्त शास्त्रों का ज्ञान स्वयमेव हो जाता है।

***महाभारत** में कहा भी गया है कि–*

सर्वशास्त्रमयी गीता (भीष्म पर्व 43/2)[1]

श्रीभगवान् के मुखार–विन्द से निःसृत होने के कारण सभी शास्त्रों से श्रेष्ठतम कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नही है। स्वयं **कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास** ने कहा है कि–

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्र विस्तरैः।
यः स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता।।[2] (गीता माहात्म्य, श्लोक 13)

श्रीमद्भगवद्गीता को गायत्री मंत्र एवं गंगा से भी श्रेष्ठ बताया गया है क्योंकि गायत्री जप एवं गंगा स्नान करने वाला स्वयं ही मुक्त होता है परन्तु गीता का अध्येता तरन–तारन बन जाता है तथा दूसरों के लिये भी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। **वाराहपुराण** में श्रीभगवान ने स्वयं गीता की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है–

गीताश्रयेऽहं तिष्ठामि गीता मे चोत्तमं गृहम्।
गीताज्ञानमुपाश्रित्य त्रींल्लोकान पलाम्यहम्।।[3]

श्रीमद्भगवद्गीता महाभारत सदृश विशालकाय ग्रन्थ का सारतम् अंश है। इसके सप्तशत श्लोकों में निःश्रेयस की प्राप्ति के उपाय अत्यन्त सरलतम शैली में वर्णित है।

गागर में सागर भरने वाली अपनी विशिष्टता के कारण श्रीमद्भगवद्गीता की उपमा कामधेनु या कल्पवृक्ष से भी की गयी है। गीता की प्रासंगिता का महत्वपूर्ण कारण उसमें ज्ञानयोग, कर्मयोग एवं भक्तियोग की अद्भुत त्रिवेणी का एक साथ प्रवाहित होना, समन्वय दृष्टि तथा विश्वबन्धुत्व की भावना है। भारतीय दार्शनिकों ने गीता की गणना प्रस्थानत्रयी के अन्तर्गत द्वितीय प्रस्थान में करके इसकी महिमा का पूरा आभास करा दिया है। श्रीमद्भगवद्गीता के प्रत्येक अध्याय की पुष्पिका में **'ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे'** कहने का आशय है कि गीता का मुख्य प्रतिपाद्य विषय ब्रह्मविद्या पर प्रतिष्ठित व्यवहार का प्रतिपादन है।

अध्यात्म तत्व का चिंतन श्रीमद्भगवद्गीता में बहुत परिमार्जित भाषा में पदे–पदे किया गया है। शंकराचार्य गीताभाष्य के उपोद्घात में श्रीमद्भगवद्गीता को दुर्विज्ञेयार्थ बताते हैं –

'तदिदं गीताशास्त्रं समस्त वेदार्थसार संग्रह भूतं दुर्विज्ञेयार्थम्।'[4] (गीताभाष्य, उपोद्घात)

अध्यात्म चिंतन की दिशा में अध्यात्मिक तत्व को श्रीमद्भगवद्गीता में ब्रह्मतत्त्व, जीवतत्त्व, जगततत्त्व तथा पुरूषोत्तम के माध्यम से निरूपित किया गया है।

श्रीमद्भगवद्गीता में ब्रह्मतत्व –

परमतत्त्व के अस्तित्व की विवेचना गीता के विभिन्न अध्यायों में की गई है परन्तु अष्टम् एवं त्रयोदश अध्याय में ब्रह्मतत्व वर्णन विस्तृत रूप में प्राप्त होता है। गीता में ब्रह्म के सगुण तथा निर्गुण दोनों रूप प्राप्य हैं, क्योंकि ये दोनों अभिन्न परमतत्त्व के ही रूप हैं और इन दोनों में किसी प्रकार का विरोध नही है–

"सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम्।
असक्तमं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुण भोक्तृ च।।[5] (श्रीमद्भगवद्गीता 13/14)

ब्रह्म समस्त इन्द्रिय समूहों द्वारा विषयों को ग्रहण करने में समर्थ है। श्रुति में कहा गया है –

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता।
पश्चत्यक्षुः स श्रृणोत्यकर्णः।।[6] (श्वेताश्वेतरोपनिषद् 3/19)

वह स्वयं समस्त इन्द्रियों से हीन है। वह सभी तरह के देहादिक सम्बन्धों से रहित हैं परन्तु सभी को धारण करता है। वह निर्गुण है तथापि गुणों का भोक्ता है वह न तो सत् और न तो असत् कहा जाता है।

यथा –

'अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते।'[7] (श्रीमद्भगवद्गीता 13/12)

वह सत् भी है असत् भी है तथा इन दोनों से परे भी है। श्रीमद्भगवद्गीता के एकादश अध्याय में कहा गया है कि –

'अनन्तदेवेश जगन्निवास।
त्वमक्षरं सदसत्तपरं यत्।।[8] (गीता 11/37)

श्रीमद्भगवद्गीता के त्रयोदश अध्याय में कहा गया है कि परमब्रह्म न तो सत् कहा जाता है और न ही असत् कहा जाता है। ब्रह्म भूतों के भीतर तथा बाहर दोनों ओर है वह अचर चर, दूरस्थ तथा अन्तिकस्थ है।

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तविज्ञेयं दूरस्थ चान्तिके च तत्।।[9] (13/15)

श्रीमद्भगवद्गीता के इन वचनों में विरोध की कल्पना नहीं करनी चाहिये, क्योंकि देश–काल निमित्तादि उपाधियों से विरहित परमतत्व समस्त विरोधों का अन्त है। यह विचारशास्त्र का गूढ़ सिद्धान्त है। भगवान इस जगत का उत्पत्ति एवं लयस्थान भी है।

अहं कृत्स्नस्य जगतःप्रभवः प्रलयस्तथा।।[10] (7/6)

RRIJM 2015, All Rights Reserved

जिस प्रकार सूत्र की डोरी में उसी सूत्र की गाँठे लगाकर उन्हें मणियाँ बनाकर माला बना लेते हैं और जैसे उस डोरी मे एवं गाँठों की मणियों में सर्वत्र केवल सूत्र ही व्याप्त रहता है। श्रीमद्भगवद्गीता के सप्तम अध्याय में कहा भी गया है –

'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।[11] (7/7)

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् के दो प्रकार के भावों की सत्ता बतलायी गयी है –

भगवान के दो भाव हैं– अपर भाव एवं पर भाव। ईश्वर एक ही अंश से योग माया से युक्त रहता है तथा उसी अंश से जगत में अभिव्यक्त होता है।

यथा –

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्।।[12] (10/41)

यह अपरभाव विश्वानुग रूप है परन्तु भगवान केवल जगन्मात्र ही नहीं है प्रत्युत वे इसको अतिक्रमण करने वाले भी है। यही उनका वास्तविक रूप पर भाव या विश्वतिग रूप है–

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्।। (गीता 7/24)

गीता में भगवान दो प्रकृतियों का वर्णन प्राप्त होता है– परा तथा अपरा। अपरा प्रकृति का ही दूसरा नाम क्षेत्र तथा क्षर पुरूष है एवं परा प्रकृति की अन्य संज्ञा क्षेत्रज्ञ तथा अक्षर पुरूष है। परा अर्थात् उत्कृष्टि प्रकृति से तात्पर्य जीव से है

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।।[14] (गीता 7/5)

अपरा चैतन्य के अभाव से निकृष्ट प्रकृति से अभिप्राय जीवेतर समस्त पदार्थों से है। समस्त भौतिक पदार्थो का समावेश क्षर पुरूष के अंतर्गत किया जाता है। जिसका विकास पृथ्वी, जल, अग्नि वायु, आकाश, मन, बुद्धि एवं अहंकार इन अष्टधा अपरा प्रकृति तथा चतुर्विशति प्रकार के क्षेत्र के रूप में होता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में जीवतत्त्व – जीव चैतन्यात्मक होने से परमेश्वर की परा प्रकृति अर्थात् उत्कृष्ट विभूति है, वही क्षेत्रज्ञ कहा गया है। पूर्वजन्म के किये गये प्रारब्ध कर्मों का फलधारण करने के कारण भोगायतन शरीर की ही क्षेत्र संज्ञा है क्षेत्र के स्वामी को क्षेत्रज्ञ नाम से अभिहित किया जाता है। आत्मा अर्थात् जीव **'जायते, अस्ति, विपरिणमते, वर्धते, अपक्षीयते, विनश्यति** इत्यादि षट् भाव विकारों से रहित है।

उक्त च–
न जायते म्रियते वा विपश्चि–
न्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो–
न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।[15] (कठोपनिषद्, 1/2/18)

यह जीव अर्थात आत्मा अच्छेद्य अदाह्य, अक्लेद्य, अशोष्य, नित्य सर्वव्यापी, अचल, स्थिर, सनातन, अव्यक्त, अचिन्त्य एवं विकार रहित है अतः इसके विषय में शोक करना व्यर्थ है निष्काम पुरूष इन्द्रियों की निर्मलता से आत्मा की महिमा को देखता है और शोक रहित हो जाता है। श्रीमद्भगवद्गीताके द्वितीय अध्याय में श्री भगवान ने अर्जुन को इस अविनाशी जीव का वृहदरूप में सांख्य योग के माध्यम से उपदेश दिया है –

यथा –

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च –
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।[16] **(2/24)**
अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते–
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि।।[16] **(2/25)**

जिस प्रकार एक ही सूर्य इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करता है उसी प्रकार का एक ही आत्मा सम्पूर्ण क्षेत्र अर्थात् अपरा प्रकृति को प्रकाशित करता है–

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्र क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत।।[17] (श्रीमद्भगवद्गीता 13/33)

यह अविनाशी जीवतत्त्व अर्थात् आत्मा प्रत्येक अवस्था में सदा–सर्वदा शुद्ध, विज्ञानस्वरूप, अकर्ता, निर्विकार सम और निरंजन ही रहता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में जगततत्त्व – जगत का प्रभव, स्थिति एवं प्रलय भगवान के कारण है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान को समस्त भूतों का सनातन अविनाशी अव्यय बीज बताया गया है।

'बींज मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।[18] (श्रीमद्भगवद्गीता 7/10)

जिस प्रकार बीज से वृक्ष उत्पन्न होते हैं तथा अन्त में बीज में ही लीन हो जाते हैं उसी प्रकार जगत की भी स्थिति है। संसार के अवान्तर आविर्भाव काल को ब्रह्मा का दिन तथा अवान्तर तिरोभाव काल को ब्रह्मा की रात्रि कहते हैं। सांख्य दर्शन प्रकृति से ही जगत् की उत्पत्ति स्वीकार करता है परन्तु गीता इस सिद्धान्त से सहमत नहीं है। श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार प्रकृति का अध्यक्ष ईश्वर है। अतः उसी की अध्यक्षता में प्रकृति जगत को उत्पन्न करती है क्योंकि अचेतन जड़ प्रकृति में यह सामर्थ्य नहीं है कि वह बिना ईश्वर की सहायता के सृष्टि की रचना कर सके।

उक्तं च–
मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते।।[19] (श्रीमद्भगवद्गीता 9/10)

अतः स्पष्ट है कि प्रकृति मातृस्थानीया तथा ईश्वर पितृस्थानीय है। ईश्वर का स्थान प्रकृति से श्रेष्ठ है। गीता के अनुसार जगत मायिक तथा काल्पनिक न होकर सर्वथा सत्य तथा वास्तविक है।

श्रीमद्भगवद्गीता में पुरुषोत्तम– पुरुषोत्तम तत्व श्रीमद्भगवद्गीता का परम रहस्ययुक्त तथा महत्वपूर्ण आध्यात्मिक तत्व माना जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में अव्यक्त तथा अक्षर शब्द का प्रयोग व्यक्ताव्यक्त से परे प्रकृति पुरूष के ऊपर एक विशिष्ट तत्व के लिये भी किया गया है।

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।।[20] (श्रीमद्भगवद्गीता 15/18)

जड़ जगत से भिन्न चेतन ब्रह्म को या अव्यक्त प्रकृति से परे विद्यमान रहने वाले सचेतन तत्त्व को अक्षर ब्रह्म कहते हैं, परन्तु जो ईश्वर इस विश्व को व्याप्त करता हुआ भी इससे पर है। जगत के समस्त पदार्थों में स्थित एवं साथ ही साथ उनसे पृथक भी है। जो विश्वानुग होकर विश्वातीत है वही ईश्वर पुरुषोत्तम पदवाच्य है। इसी पुरुषोत्तम को सर्वकर्म समर्पण करने की शिक्षा गीता देती है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट है कि श्रीमद्भगवद्गीता में औपनिषदिक ब्रह्मवाद, सांख्य सम्मत

प्रकृति–पुरूष वाद एवं भागवत धर्माभिमत ईश्वरवाद का हृद्य उपस्थित किया गया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. महाभारत, भीष्म पर्व (43/2)
2. श्रीमद्भगवद्गीता माहात्म्य श्लोक, 13, गीता प्रेस, गोरखपुर
3. वाराहपुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर
4. गीताभाष्य
5. श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस गोरखपुर
6. ईशादि नौ उपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर
7. श्रीमद्भगवद्गीता, जयदयाल गोयन्दका, गीता प्रेस, गोरखपुर
8. श्रीमद्भगवद्गीता, जयदयाल गोयन्दका, गीता प्रेस, गोरखपुर
9. श्रीमद्भगवद्गीता, जयदयाल गोयन्दका, गीता प्रेस, गोरखपुर
10. श्रीमद्भगवद्गीता, जयदयाल गोयन्दका, गीता प्रेस, गोरखपुर
11. श्रीमद्भगवद्गीता, जयदयाल गोयन्दका, गीता प्रेस, गोरखपुर
12. श्रीमद्भगवद्गीता, जयदयाल गोयन्दका, गीता प्रेस, गोरखपुर
13. श्रीमद्भगवद्गीता, जयदयाल गोयन्दका, गीता प्रेस, गोरखपुर
14. श्रीमद्भगवद्गीता, जयदयाल गोयन्दका, गीता प्रेस, गोरखपुर
15. ईशादि नौ उपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर
16. श्रीमद्भगवद्गीता, जयदयाल गोयन्दका, गीता प्रेस, गोरखपुर
17. श्रीमद्भगवद्गीता, जयदयाल गोयन्दका, गीता प्रेस, गोरखपुर
18. श्रीमद्भगवद्गीता, जयदयाल गोयन्दका, गीता प्रेस, गोरखपुर
19. श्रीमद्भगवद्गीता, जयदयाल गोयन्दका, गीता प्रेस, गोरखपुर
20. श्रीमद्भगवद्गीता, जयदयाल गोयन्दका, गीता प्रेस, गोरखपुर